IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के "दार्शनिक विचार- राष्ट्र" की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

डॉ. अनिल कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, श्री बजरंग पी. जी. कॉलेज, दादर आश्रम, सिकंदरपुर, बलिया, उत्तर प्रदेश

सारांश

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी राष्ट्र और देश प्रेम को सर्वोच्च मानते है। दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार भूमि, जन और संस्कृति के मिलने से 'राष्ट्र' का निर्माण होता है। उनका मानना है कि "संस्कृति राष्ट्र का शरीर, 'चिति' आत्मा तथा 'विराट' उसका प्राण है।" दीनदयाल उपाध्याय जी 'हिंदू राष्ट्रवाद' की संकल्पना देते हैं और इसके साथ ही क्षेत्रीय राष्ट्रवाद की कल्पना का खंडन और विरोध करते हैं। दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना है कि राष्ट्र के विकास के लिए स्वदेश और स्वदेश प्रेम का सबसे अधिक महत्व होता है।

दीनदयाल उपाध्याय जी का विचार दर्शन व्यष्टि से लेकर परमेष्टि तक का समन्वित रूप है। दीनदयाल जी के दर्शन का केंद्रबिंदु व्यष्टि ही है। दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना है कि व्यक्ति ना तो पृथक रूप से पूर्णसत्ता है तथा न ही अपूर्ण। मानव तो व्यष्टि, समष्टि और सृष्टि के साथ एकात्म रहता है। व्यष्टि, समष्टि और सृष्टि एक अविभाज्य इकाई है। दीनदयाल उपाध्याय जी इनमे समन्वय स्थापित करते है और इसे समग्र रूप में देखते हैं।

कुंजी शब्द- राष्ट्र, राष्ट्रवाद, संस्कृति, चिति, विराट, व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि, परमेष्टि।

एकात्म मानववाद को यदि जानना है, समझना है तो हर हालत में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के दार्शनिक विचार को जानना ही पड़ेगा।

एकात्म मानववाद कोई नई विचारधारा नहीं है बल्कि जो हमारी सनातनी व्यवस्थाएं थी, सनातनी अर्थ- रचना थी, उसी का युगानुकूल रूप है। इस दर्शन का आधार ही भारतीय संस्कृति और प्रकृति है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने इस दर्शन के अंतर्गत राष्ट्र पर बहुत ही प्रासंगिक विचार दिये। जो इस प्रकार है।-

राष्ट्र-

दीनदयाल उपाध्याय जी का यह विचार है कि भूमि, जन और संस्कृति के मिलने से 'राष्ट्र' बनता है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार- "संस्कृति राष्ट्र का शरीर, 'चिति' आत्मा तथा 'विराट' उसका प्राण है।"

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी भारत के मौलिक एवं प्रकृति राष्ट्रवाद को 'हिंदू राष्ट्रवाद' की संज्ञा देते हैं और क्षेत्रीय राष्ट्रवाद की कल्पना का खंडन और विरोध करते हैं। दीनदयाल उपाध्याय जी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का समर्थन करते हैं। भारत को प्राचीनतम राष्ट्र मानते हैं और कहते हैं कि "राष्ट्रीयत्व के विकास में स्वदेश का महत्व सबसे अधिक होता है।"

इस प्रकार देखा जाय तो यह कितनी महत्वपूर्ण बात है कि जब से हम अपने देश को अपना नही मानेगे तब से हम देश के प्रति अपनी जिम्मेदारी नही निभाएंगे और न ही उसके विकास के बारे में सोंचेंगे और न ही अपनी मातृभूमि से प्यार करेंगे।

व्यष्टि-समष्टि-सृष्टि-परमेष्टि-

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का दर्शन व्यष्टि से लेकर परमेष्टि तक का एकीकृत रूप है। दीनदयाल उपाध्याय जी के चिंतन का केंद्र व्यष्टि ही है। इन सभी में समन्वय स्थापित करते हुए पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी आरंभ मानव से ही करते हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार- "मानव केवल एक व्यक्ति मात्र नहीं है अपितु शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है। व्यक्ति केवल एक वचन 'मैं' तक सीमित नहीं है बल्कि उसका बहुवचन 'हम' से भी अभिन्न संबंध है।"

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का विचार है कि व्यक्ति ना तो पृथक रूप से पूर्णसत्ता है तथा न ही अपूर्ण। मानव तो व्यष्टि, समष्टि और सृष्टि के साथ एकात्म रहता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यष्टि, समष्टि और सृष्टि एक अविभाज्य इकाई है।

दीनदयाल उपाध्याय जी 'समाज' को जीवित एवं प्राकृत संस्था मानते हैं। वे समाज को केवल व्यक्तियों का समूह मात्र नहीं मानते है। समाज का निर्माण व्यक्तियों द्वारा सोच विचार कर नहीं किया जाता है बल्कि वह तो स्वयं अपना निर्माण करता है। समाज का भी अपना एक 'सामूहिक मन' होता है तथा एक 'सामान्य इच्छा' भी होती है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का विचार है कि "व्यक्ति मिलकर कभी समाज को नहीं बनाते। यह कोई आमोद- गृह नहीं है, ना ही पंजीकृत समितियां हैं और ना ही सहकारी समितियां। वास्तव में, समाज तो एक ऐसी सत्ता है, जिसकी अपनी आत्मा है, जिसका अपना एक जीवन है, इसलिए यह भी उसी प्रकार से जीवमान सत्ता है जैसे मनुष्य जीवमान सत्ता है। समाज को हमने किसी प्रकार के कृत्रिम संगठन के रूप में स्वीकार नहीं किया है।"

ऐसा नही है की पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी केवल व्यष्टि व समष्टि का ही विचार अपने दर्शन में करते है बल्कि इसके साथ ही साथ सृष्टि व परमेष्टि का भी वर्णन अपने 'एकात्म मानववाद' के दर्शन के पूर्णता के रूप में करते हैं। भारतीय धर्मशास्त्र एवं परंपरा के अनुसार जहां सृष्टि का अर्थ- 'रचना' है और इस सृष्टि के निर्माणकर्ता 'ब्रह्मा', पालनकर्ता 'विष्णु' तथा संहारकर्ता अर्थात नष्ट करने वाले 'शंकर' हैं। इन तीनों का समन्वित ईश्वरीय सत्ता ही 'परमेष्टि' है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी इन सभी सत्ताओं को अलग-अलग नहीं मानते है, जैसा कि व्यक्तिवादी या समाजवादी लोग इनको अलग-अलग मानकर एक अवधारणा बनाते हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी व्यक्तिवादी, समाजवादी या परमात्मावादी जैसे एकांगी अवधारणा को नहीं मानते बल्कि वे समग्रता एवं एकात्मकता को मानने वाले हैं।

निष्कर्ष-

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी व्यष्टि ,समष्टि ,सृष्टि व परमेष्टि इनको अविभक्त इकाई मानते हैं। इनमें समन्वय स्थापित करते हैं। एकात्म मानववाद दर्शन की यह बहुत ही बड़ी विशेषता है कि यह चीजो को एकात्म, समग्र रूप में देखता है। यदि व्यक्ति और समाज को हम अलग-अलग मानते है तो यह गलत है। क्योंकि यदि व्यक्ति कुछ करता है तो इससे समाज भी प्रभावित होता है और इसी प्रकार यदि समाज में कोई परिवर्तन होता है तो इससे सभी व्यक्ति पर उस परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है, तो हम कैसे कह सकते है कि व्यक्ति और समाज अलग-अलग है? जब इनके बीच एकात्मकता है तो अलग-अलग अध्ययन करना कहाँ तक उचित है?

व्यक्ति और समाज एकात्म है। इनमे समन्वय स्थापित करके ही हम इनके समस्याओं को जान सकते है और दूर करके मानव जगत के सुख और कल्याण को बढ़ा सकते है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का यह विचार "राष्ट्रीयत्व के विकास में स्वदेश का महत्व" हमेशा प्रासंगिक रहेगा क्यूंकि स्वदेश की भावना के बिना हम राष्ट्र की सेवा या राष्ट्र का विकास नही कर सकते है।

राष्ट्र से लोगो का अस्तित्व और पहचान होता हैं।

स्वदेश की भावना होने पर ही हम अपने देशवासियों से प्यार करते है, अपना मानते है। अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं और संसाधनों का कुशल प्रयोग करते हैं। अपना देश मानकर ही हम अपने संविधान और कानून का पालन करते है। आतंकवाद, उग्रवाद, भ्रष्टाचार, देश विरोधी गतिविधियों का हम विरोध करते हैं। मेहनत के बल पर राष्ट्र को आगे ले जाते है।

वर्तमान में जिस तरह आतंकवाद, उग्रवाद बढ़ रहा है, बाह्य देश से युद्ध हो रहा है और देश के अंदर कट्टरता व विखंडन की भावना बढ़ रही है। ऐसे में दीनदयाल उपाध्याय जी का राष्ट्र और स्वदेश पर जो विचार है उसकी प्रासंगिकता बढ़ जाती है।

संदर्भ-

1. उपाध्याय, दीनदयाल. एकात्म मानववाद. नई दिल्ली: भारतीय जनसंघ कार्यालय.

2. उपाध्याय, दीनदयाल (1960). राष्ट्रजीवन की समस्याएं. लखनऊ: राष्ट्रधर्म प्रकाशन.
3. उपाध्याय, दीनदयाल (1972). राष्ट्रचिंतन. लखनऊ: राष्ट्रधर्म प्रकाशन.

4. उपाध्याय, दीनदयाल (1979). राष्ट्रजीवन की दिशा. लखनऊ: लोकहित प्रकाशन.

5. उपाध्याय, दीनदयाल (1989). हिन्दू संस्कृति की विशेषता. गाज़ियाबाद: जागृति प्रकाशन.

6. ठेंगड़ी, दत्तोपंत (1991). पंडित दीनदयाल उपाध्याय: व्यक्ति दर्शन खंड- 1: तत्व जिज्ञासा. नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन.

7. गुप्त, बजरंग लाल (2019). राष्ट्र दृष्टि. प्रयागराज: संपादक- डॉ. चन्द्र प्रकाश सिंह, अरुंधति वशिष्ठ अनुसंधान पीठ.

8. गुप्त, बजरंग लाल (2017). भारतीय अस्मिता की निरंतरता. प्रयागराज: संपादक- डॉ. चन्द्र प्रकाश सिंह, अरुंधति वशिष्ठ अनुसंधान पीठ.

9. पाठक, विनोद चंद्र (2009). पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक चिन्तन. नई दिल्ली: प्रकाशक- आर. डी. पाण्डेय, सत्यम पब्लिशिंग हाऊस.

10. गुप्त, बजरंग लाल (2010). एकात्म दृष्टि- भारत का भविष्य. प्रयागराज: संपादक- डॉ. चन्द्र प्रकाश सिंह, अरुंधति वशिष्ठ अनुसंधान पीठ.

11. शर्मा, महेश चंद्र (1994). दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार. नई दिल्ली: वसुधा पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड.

12. जोशी, मुरली मनोहर (1991). दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति और विचार. उत्तर प्रदेश संदेश, अंक- 9.

13. गोपाल, कृष्ण (2019). राष्ट्र का राजनीतिक प्रबोधन और एकात्म मानव दर्शन. पंडित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति और व्यक्तित्व खण्ड - 1, प्रयागराज: संपादक- डॉ. जितेंद्र कुमार संजय और डॉ. इंद्र कुमार ठाकुर, साहित्य भंडार.

14. नेने, विनायक वासुदेव (1986). पंडित दीनदयाल उपाध्याय: विचार दर्शन खंड- 2 एकात्म मानव दर्शन. नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन.